



कमर कस, अधीरता को छोड़, वीरता को धारण करो

जीवन एक यात्रा है; हरेक को अपने गंतव्य स्थान पर पहुँचने का ध्यान तो रखना ही चाहिए। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि हरेक को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तदनुसार लक्षण तो धारण करने ही चाहिए अथवा वांछित सिद्धि प्राप्त करने या सिद्धि स्वरूप बनने के लिए हरेक को साधना तो करनी ही चाहिए। जब संसार में अनगिनत उपलब्धियों को एक ओर रखकर योगी हो बनने का किसी ने व्रत लिया हो तो उसे योग की सूक्ष्मता, गहराई, ऊँचाई या सिद्धि तक पहुँचने का पूरा यत्न तो करना ही चाहिए। आधा मर कर काम करने से क्या लाभ? उत्साह और उमंग ही यदि साथ न रहें तो एक किलो वजन भी एक क्विंटल महसूस होता है। अतः परिस्थितियों से जुड़ा पड़ना ही वीरता है और कमर कस काम करने में ही सफलता है। योग से जो लाभ होते हैं, उनकी यदि सूची बनाने बैठें तो सम्भव भी नहीं होगा कि हम सूची बना पायें। इसके बजाय ऐसा ही क्यों न कहें कि 'कोई ऐसी श्रेष्ठ प्राप्ति है ही नहीं जो योगी जीवन से प्राप्त न होती हो।' जो प्रारम्भ बनती है वह तो अनुपम होती ही है परंतु वर्तमान में योग की स्थिति से जो उपलब्धियाँ होती हैं, वे भी तो गुंगे को गुड़ के समान अवर्णनीय होती हैं।

गति मंद क्यों?

परंतु यह सब जानते हुए भी योगी अपने पथ पर चलते-चलते स्वल्प ही प्राप्ति क्यों कर पाता है? उसकी गति मंद क्यों हो जाती है? अपार प्राप्ति के मार्ग से हटकर वह रक क्यों जाता है? वह कभी-कभी पीछे क्यों हटने लगता है? योगी जीवन का जो श्रेष्ठ और रसीला अनुभव है, उसकी कमी क्यों महसूस करने लगता है? प्रभु की ओर बढ़ते-बढ़ते वह मार्ग खो क्यों बैठा है? यह तो एक अथाह हानि हो जाती है। पुरुषार्थी अपने मंद गति के कारण ही बताता रहता है; अपनी धीमी प्राप्ति होने का स्पष्टीकरण ही देता रहता है परंतु इसी बीच ऐसी अपार हानि हो जाती है कि फिर पछताने से उसकी क्षति-पूर्ति तो हो नहीं सकती। लोग योगी को यम, नियम... और प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास करने के लिए कहते हैं और योगी भी मन में परमपिता परमात्मा का 'ध्यान' करने तथा यम-नियमों का पालन करने का पुरुषार्थ करने का ख्याल रखता है, परंतु दो-तीन बातों का ध्यान न रखने से धीरे-धीरे यम-नियम भी ढीले होने लगते हैं और परमपिता परमात्मा में भी ध्यान नहीं लगता। अतः मन में परमात्मा का 'ध्यान' करने के साथ-साथ दो-तीन महत्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान देना भी जरूरी है वरना स्थिति परिवर्तन नहीं हो पाती। किसी ने कहा है- 'आया कुत्ता खा गया तू बैठी ढोल बजा।' एक माता अपनी पड़ोसिन के साथ ढोल बजा कर रौत करने के शान्ति प्राप्त करने के यत्न में लगी थी; उसका ध्यान हटा देख कर कुत्ता उसकी यभी रोटियाँ ही हजम कर गया! ऐसे ही मनुष्य तो टेप-रिकॉर्ड और कैसेट रूपी आधुनिक ढोल पर गीत बजा कर परमात्मा का ध्यान करने का यत्न कर रहा

होता है परंतु व्यर्थ संकल्प रूपी 'कुत्ता' आकर उसकी बनायी हुई धारणा ही चट करने लग जाता है। अतः जरूरत इस बात की है कि मनुष्य जैसे ही परमपिता परमात्मा का 'ध्यान' करे वैसे वह तत्सम्बन्धित आवश्यक बातों पर भी ध्यान दे ताकि न केवल वह योगाभ्यासी ही बना रहे बल्कि वह 'योगी जीवन' वाला भी हो। इसलिए निम्नलिखित दो-तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं:-

सीखने की प्रवृत्ति और नम्रता

आध्यात्मिक जीवन में प्रगति रुक जाने का एक बहुत बड़ा कारण है- धीरे-धीरे सीखने की प्रवृत्ति का मन्द पड़ जाना। जब व्यक्ति योगी जीवन के पथ पर पग धरता है तब प्रारंभ में तो उसे एक धुन-सी लग जाती है। जीवन को पलट डालने के लिए वह उत्साही हो उठता है। उसके मन में यह संकल्प समर्थ बन जाता है कि योग के



उच्च शिखर पर चढ़ जाना है। परंतु जब वह कुछ सीख जाता है, थोड़े-बहुत अन्य लोगों से आगे भी निकल जाता है या उसे योग के कुछ अच्छे अनुभव भी हो जाते हैं, तब वह स्वयं को अनुभवी या योग में शिक्षित मान कर चलने लगता है और आगे सीखने में उसकी पूर्ववत् रुचि नहीं रहती। उसका एक कारण यह भी होता है कि वह दूसरे योगाभ्यासियों में कई बार कोई जलवा नहीं देखता बल्कि उन्हें भी कहीं-न-कहीं रुका हुआ देखता है या वह स्वयं को ही समझदार मानकर दूसरों से योग-चर्चा करने, अनुभव का लेन-देन करने, उनसे अपनी प्राप्ति के लिए कुछ प्रकाश पाने की कामना ही नहीं करता। सूक्ष्म रूप में उसमें एक अहंकार-सा होता है जिसका कई बार उसे पता भी नहीं रहता। वह अब यह भी नहीं सोचता कि अब यदि शरीर झूट जायेगा तो क्या गति होगी? क्यों न किसी वरिष्ठ योगी से कुछ और लाभ ले लें? जीवन के कार्य-क्षेत्र में वह भी कार्यकुशल होने से स्वयं को सर्व प्रकारों कुशल हो मानने लग जाता है और अपनी कमियों को छिपा कर, दबा कर या यों ही एक ओर कर के रख लेता है। वह सोचता है कि 'कमियाँ तो सभी में हैं।' इस प्रकार स्वयं को 'तीस मार खान' मान कर वह इतना तो गर्व के गर्त में धंस जाता है कि यदि उसे कोई हित-कामना कर के दलदल से निकालना भी चाहे तो वे उसे अपने से भी कम श्रेणी का या सम-श्रेणी का मानकर, उसकी नसीहत को ही उड़ा देता है। परिणाम यह होता है कि पहले तो कोई, चाहे उससे वरिष्ठ ही क्यों न हो, उसे कुछ हित-मंगल की बात कहने में ही संकुचाता है; यदि वह उसे कह भी दे तो वह उसे 'हस्तक्षेप', 'अनाधिकार

चेष्टा', 'अनुचित' या 'व्यर्थ की बात' मानता है। वह या तो समझता है कि 'यह बात तो मुझे भी मालूम थी, यह कौन सी नई बात है', अथवा 'यह कमजोरी तो सभी में है, केवल मुझ में थोड़े ही है,' या कि 'केवल मुझे ही यह शिक्षा क्यों दी जाती है'; मुझे समझाने वाला पहले अपनी भूल तो ठीक करे...।'

इस प्रकार की सारी प्रतिक्रिया सूक्ष्म अभिमान की ही कोपलें, काटे और जहरीले पत्ते ही तो हैं। परंतु वह इन्हें ही अपनी बुद्धिमत्ता मानकर सदबुद्धि के मार्ग पर आगे अनुभव पाने से वंचित रह जाता है।

इसलिए कहा गया है कि नम्रता के बिना मनुष्य सीख नहीं सकता और कि जो सीखना ही नहीं चाहता, मानो कि वह बुद्धा हो गया है; उसकी युवावस्था ही समाप्त हो गयी है। जब कोई सीखना ही बंद कर देता है तो उस बुद्धे का विकास कैसे होगा? अतः

आध्यात्म के पुरुषार्थी का सब से पहले तो इस बात पर ध्यान होना चाहिए कि अभी और बहुत कुछ सीखना है। जिससे भी कुछ अच्छी बात मिले, उसे अवश्य धारण करना है। यह सारा जीवन ही अन्त तक सीखने के लिए है।

गुणग्राहक वृत्ति में कमी

सीखने का एक तरीका तो यह है कि जिससे भी हमें कोई अच्छी बात सुनने और समझने को मिले उसको हम अपने अभिमान में

आकर या कोई-न-कोई व्याख्या देकर उसका तिरस्कार न कर दें बल्कि बताने वाले का भी हार्दिक धन्यवाद करके कहें कि हम इस बात पर ध्यान देंगे और सही अर्थों में हम इस बात पर ध्यान देंगे। दूसरा तरीका यह है कि यदि हमें मौखिक रूप से कोई ऐसा ज्ञान-मोती या गुण-रत्न नहीं भी देता है तो हम वैसे भी व्यवहार में हरेक से गुण लें और उसके गुण की कभी चर्चा भी करें। यदि हम गुण नहीं लेंगे तो अवगुण लेंगे और उससे तो पतन ही होगा, प्रगति तो नहीं होगी। किसी के अवगुण देखने पर भी हम कुछ तो सीख रहे ही होंगे परंतु उल्टा सीख रहे होंगे। इस से पुरुषार्थी को गाड़ी आगे बढ़ने की बजाय पीछे ही हटोगी।

टाल मटोल करने की आदत

हमारी प्राप्ति न होने का एक कारण यह भी है कि हम यह मान कर चलते हैं कि आगे चलकर हम अपने संस्कारों को बदल देंगे, परिस्थितियाँ ही ऐसी आयेंगी जो सभी बदलेंगे; तब हम भी तो बदलेंगे ही। कुछ समय के बाद, जब हमारी अमुक परिस्थिति बदल जायेगी तो हम खूब योग साधेंगे। हम ऐसा तोत्र पुरुषार्थ करेंगे कि सभी देखते ही दंग रह जायेंगे। इस प्रकार के सोच से मनुष्य पुरुषार्थ को स्थगित अथवा मुलतवी करता जाता है और परिणाम यह होता है कि समय हाथ से निकल जाता है।

अतः इस बात की ओर भी ध्यान देने की जरूरत है कि समय हाथ से न निकल जाये, जो करना है उसमें हम टालमटोल न करें वरना यह आलस्य और अलवैलापन बहुत ही हानिकारक है। यदि हम इन बातों पर ध्यान देंगे तो परमपिता परमात्मा में ही हमारा 'ध्यान' लगेगा ही।

- ब.कु. जगदीशचन्द्र हसीजा



बेलगाम-कर्नाटक। सांसद सुरेश कुमार अंगाडी को ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए ब.कु. अम्बिका।



मोहम्मदी-खीरी। नगरपालिका अध्यक्ष दुर्गा महरोज को ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए ब.कु. अनुराधा तथा ब.कु. लवली।



कन्नौज-सिपाही ठाकुर मोहल्ला। साधवी बहन विपाठी जी को ईश्वरीय सौगात भेंट करते हुए ब.कु. पूनम। साथ हैं ब.कु. रेखा।



आणंद-गुज.। इनर लीडरशिप विषय पर सेमिनार के पश्चात् समूह चित्र में अमूल डेयरी के एम.डी. के.रत्नमान, जी.एम. जे.के. जोशी, मैनेजर्स, ब.कु. गीता, ब.कु. दीपा, मुखई तथा अन्य।



नवसारी-गुज.। चैतन्य देवियों की झाँकी का आध्यात्मिक रहस्य बताते हुए ब.कु. गीता। साथ हैं ब.कु. राजयोगिनी।



जसपुर। सी.आर.पी.एफ. में कार्यक्रम के पश्चात् समूह चित्र में ब.कु. सरिता, ब.कु. संजू तथा अन्य।

